'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय', गाथा १०। पुरुष अर्थात् चैतन्य आत्मा। उसे यह अशुद्धता किस प्रकार हुई? प्रश्न यह है। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय। पुरुष अर्थात् चैतन्यस्वरूप आत्मा। उसकी मुक्ति की-शुद्धि की सिद्धि का उपाय। प्रयोजन का उपाय करना हो तो अशुद्धता हुई किस प्रकार?-यह प्रश्न है। अशुद्धता होवे तो उसे अशुद्धता मिटाने का और शुद्धता प्रगट करने का प्रयत्न होवे, तो अशुद्धता हुई किस प्रकार?-यह प्रश्न है। समझ में आया? भगवान चैतन्यस्वरूप आत्मा के प्रयोजन की सिद्धि करनी है तो इसका अर्थ कि इसे प्रयोजन की सिद्धि नहीं है अर्थात् इसे अशुद्धता-मलिनता इसकी दशा में है तो वह मलिनता आयी किस प्रकार कि जिसे मिटाकर अपनी शान्ति का प्रयोजन सिद्ध करना पड़े? समझ में आया?

उसका यह उत्तर चलता है। **इन परिणामों का व्याप्य-व्यापकभाव से आत्मा ही कर्ता है।** क्या कहते हैं? जो शुभ-अशुभराग होता है न? आत्मा में शुभ और अशुभ,

www.vitragvani.com

पुण्य और पाप का भाव, उसके उस परिणाम का कर्ता आत्मा है। आत्मा ने किया हुआ वह विकार, वह उसका कार्य है; इस कारण उसे टालने के लिये स्वभाव का आश्रय लेकर आत्मा की सिद्धि करनी पड़ती है। समझ में आया?

भाव्य–भावकभाव से आत्मा ही भोक्ता है। आत्मा स्वयं ही अपने विकारभाव का... व्याप्य अर्थात् अवस्था, व्यापक अर्थात् स्वयं पदार्थ, उसका कर्ता और ऐसे ही राग-द्वेष अथवा हर्ष-शोक के भाव, उसका वह भाव्य अर्थात् भोगनेयोग्य (है और) आत्मा भोक्ता है। अपने ही विकारी हर्ष-शोक के परिणाम को आत्मा भोगता है; इसलिए उनका भोक्ता कहलाता है। दूसरे दो सिद्धान्त हुए—कर्ता और भोक्ता। विकार का (कर्ता) आत्मा और विकार का भोक्ता भी आत्मा। कर्म के कारण नहीं, कर्म का कर्ता नहीं, कर्म का भोक्ता नहीं। कर्म के कारण विकार का कर्ता नहीं, कर्म के कारण विकार का भोक्ता नहीं और कर्म का कर्ता और कर्म का भोक्ता भी आत्मा नहीं—ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....तो कर्म को लेकर आया न?

उत्तर : कहाँ आया? इसका—स्वयं का परिणाम हुआ, ऐसा हुआ; निमित्त से परिणाम हुए? हुए तो अपने, उससे हुए हैं कहाँ? हुए है अपने। विकारी परिणाम जीव करता है, तब निमित्त से हुए—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। यह तो निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा जाता है।) आत्मा पर को कर्ता नहीं और पर से आत्मा में कराता नहीं—यह जब तक इसे निर्णय न हो, तब तक पुरुषार्थ से उसे टालना—ऐसा इसे अवकाश नहीं रहता। कहो, समझ में आया? अब इसकी व्याख्या करते हैं।

व्याप्य–व्यापकभाव अर्थात् क्या?.... तुमने ऐसा कहा कि व्याप्य-व्यापकभाव से आत्मा ही कर्ता है-ऐसा है न? 'ही' है न? आत्मा ही अपने शुद्ध आनन्द के महान स्वभाव को... इस कारण यह शब्द आया था 'अबधु।' 'आप स्वभाव में रे अबधु सदा मगन में रहेना।' समझ में आया? 'आप स्वभाव में रे अबधु सदा मगन में रहेना।' धर्मी जीव को आप स्वभाव अर्थात् आत्मा का ज्ञान, आनन्द आदि त्रिकाल शुद्ध स्वभाव है, उसमें उसे मग्न रहना अर्थात् रुचि, स्थिरता करके जमना। यह मस्त धर्मी जीवों का यह कर्तव्य और कार्य है। समझ में आया? कहते हैं, यह मस्तपना प्रगट किस प्रकार हुआ?

www.vitragvani.com

पहले विकार में स्वयं कर्तापने था, तो उस विकार को टालनेवाला स्वभाव की मस्ती में आकर विकार को टालता है। समझ में आया?

व्याप्य-व्यापकभाव से जीव इन पुण्य-पाप, काम, क्रोध, दया, दान, व्रत आदि के शुभाशुभ विकारभाव का आत्मा व्याप्य-व्यापक से करनेवाला, रचनेवाला है। अर्थात् क्या कहते हैं? व्याप्य-व्यापक अर्थात् क्या? कि **जो नियम से सहचारी हो, उसे व्याप्ति कहते हैं।** व्याप्य और व्यापक समझाने के पहले व्याप्ति समझाते हैं। जो नियम से साथ में हो, सहचारी हो, उसे व्याप्ति कहते हैं। अर्थात् क्या? व्याप्ति अर्थात् कैसे समझना? **जिस प्रकार धुआँ और अग्नि में साहचर्य है....** जैसे धुआँ हो, वहाँ अग्नि होती ही है; अग्नि न हो, वहाँ धुआँ होता ही नहीं। जहाँ धुआँ हो, वहाँ अग्नि होती ही है और जहाँ अग्नि न हो, वहाँ धुआँ होता ही नहीं। अग्नि हो, वहाँ धुआँ हो या न हो, यह प्रश्न अभी यहाँ नहीं है। यहाँ तो धुआँ हो, वहाँ अग्नि होती ही है; अग्नि न हो, वहाँ धुआँ होता ही नहीं। जैसे रसोई में धुआँ है तो अग्नि है। तालाब में अग्नि नहीं तो धुआँ नहीं। समझ में आया?

जिस प्रकार धुआँ और अग्नि में साहचर्य है अर्थात् जहाँ धुआँ होता है, वहाँ अग्नि होती ही है.... यह सहचारी सम्बन्ध है, अविनाभावसम्बन्ध है। अविनाभाव-सम्बन्ध। धुएँ को और अग्नि को अविनाभावसम्बन्ध है, अर्थात् जहाँ धुआँ हो, वहाँ अग्नि होती ही है और अग्नि जहाँ न हो, वहाँ धुआँ नहीं होता, ऐसा। होता ही नहीं। **अग्नि के बिना धुआँ नहीं होता।** अस्ति-नास्ति अन्वय—व्यतिरेक किया। जहाँ धुआँ हो, वहाँ अग्नि होती ही है; जहाँ अग्नि न हो, वहाँ धुआँ नहीं। जहाँ अग्नि हो, वहाँ धुआँ होता है—ऐसा प्रश्न नहीं है, यह प्रश्न अलग हो गया। यहाँ तो धुआँ हो, वहाँ अग्नि होती है और अग्नि न हो, वहाँ धुआँ नहीं होता। समझ में आया? अन्वय—व्यतिरेक हो गया। जहाँ धुआँ हो, वहाँ अग्नि होती है; अग्नि के बिना धुआँ नहीं होता। कैसे? यह दृष्टान्त (हुआ।)

पुण्य-पाप के रागादिभाव जो हैं, **रागादिभाव और आत्मा में सहचारीपना है।** अब उसके (दृष्टान्त के) साथ मिलान करते हैं। नियम से सहचारी हो, उसे व्याप्ति कहते हैं। तो वहाँ कहा—धुएँ और अग्नि को सहचारीपना है; वैसे रागादि भाव और आत्मा में

www.vitragvani.com

सहचारीपना है। राग, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, पुण्य—ये सब भाव, राग हैं। शुभ-अशुभराग विकार है। जहाँ विकार हो, वहाँ आत्मा होता ही है, वहाँ आत्मा होता ही है। आत्मा हो, वहाँ विकार (होय)—ऐसा अभी प्रश्न नहीं है। जहाँ रागादिभाव-विकारभाव हो, वहाँ आत्मा साथ में होता ही है, सहचारी-साथ में होता है। और **जहाँ रागादि होते हैं, वहाँ आत्मा होता ही है....** है न? सहचारी कहा न? अब इसके दो सिद्धान्त (कहेंगे।) जहाँ पुण्य-पाप के भाव हो, वहाँ आत्मा होता ही है और आत्मा न हो, वहाँ पुण्य-पापभाव नहीं होता। समझ में आया? न्याय से मिलाते हैं।

आत्मा के बिना रागादि नहीं होते। रागादि, आत्मा के बिना अध्धर में होते हैं? आकाश में, परमाणु में होते हैं? समझ में आया? यह व्याप्ति। व्याप्ति अर्थात् अविनाभाव -सम्बन्ध। अविनाभावसम्बन्ध अर्थात्—जहाँ-जहाँ पुण्य-पाप के विकार, वहाँ-वहाँ आत्मा और जहाँ-जहाँ आत्मा नहीं, वहाँ-वहाँ विकार नहीं। ऐसे अविनाभावसम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं। यह समझ में आया? यह तो सादी भाषा में है, यह कोई बहुत ऐसा सूक्ष्म नहीं है। भाषा भले... व्याप्ति और व्याप्य का व्यापक कभी सुना भी न होगा। क्यों मांगीरामजी? व्याप्ति, व्याप्य, व्यापक कभी दुकान में आया नहीं होगा, पहले में आया नहीं होगा। धर्म के नाम में भी सुनने में नहीं आया होगा, लो! वहाँ तो यह करो—दया पालो, भक्ति करो,व्रत पालो, यह करो, यह करो... परन्तु यह क्या है?—ऐसा सिद्ध करते हैं। ये भाव क्या हैं? दया का, व्रत का, पुण्य का, पाप का यह भाव सब विकार, राग-विकार है और विकार है, वहाँ आत्मा है। विकार है, वहाँ जड़ है—ऐसा नहीं होता। समझ में आया? और आत्मा न हो, वहाँ विकार नहीं होता। जड़ में आत्मा नहीं, वहाँ विकार नहीं। समझ में आया? यह तो सरल भाषा है, हों! है जरा न्याय का विषय परन्तु सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : व्याप्ति कर्म के साथ है?

उत्तर : नहीं... नहीं; बिल्कुल नहीं।

इस व्याप्ति क्रिया में जो कार्य है,.... जो विकार के परिणाम हों, वहाँ आत्मा होता है। आत्मा न हो, वहाँ विकार परिणाम नहीं होते। ऐसी जो क्रिया हुई, उस क्रिया का जो कार्य, यह रागादि परिणाम—वह व्याप्ति का व्याप्य / कर्म है। इस क्रिया का राग-द्वेष,

www.vitragvani.com

पुण्य-पाप, वह कार्य है। समझ में आया? **उसे व्याप्य कहते हैं....** विकारी परिणाम, जीव के बिना नहीं होते; जीव न हो, वहाँ विकार नहीं होता। ऐसे अविनाभावसम्बन्ध की व्याप्ति क्रिया के जो वर्तमान, रागादि पुण्य-पाप के भाव, उन्हें व्याप्य, अर्थात् कार्य, अर्थात् कर्म, अर्थात् उसे कर्तव्यदशा कहा जाता है। कहो, माँगीरामजी!

वह विकारी कर्तव्य किसका? कि आत्मा का। वह विकारी व्याप्य, वह कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। कर्म (अर्थात्) यहाँ अभी जड़ की बात नहीं है। शुभ और अशुभ जो राग, पुण्य-पाप के जो विकल्प, उस विकार का आत्मा के साथ में सम्बन्धपना और वह न हो, वहाँ न हो—ऐसा सम्बन्धपना सिद्ध करके, ऐसी जो व्याप्ति का जो ज्ञान, वह व्याप्ति, उसका जो उस काल में वह व्याप्य अर्थात् विकार परिणाम, उसे कर्म कहते हैं, कर्तव्य कहते हैं, कार्य कहते हैं, उसे व्याप्य कहते हैं। विकारी परिणाम को व्याप्य कहते हैं। व्याप्ति क्रिया का कार्य, वह विकार, उसे यहाँ व्याप्य और कर्म कहा जाता है।

मुमुक्षु : एक ही द्रव्य में या दो द्रव्यों में?

उत्तर : यह कहाँ बात आयी? उसके साथ सम्बन्ध नहीं। क्या आया? व्याप्य-व्यापक कहा न? जहाँ विकार है, वहाँ आत्मा है; आत्मा नहीं, वहाँ विकार नहीं—ऐसा आया न? आत्मा है, वहाँ विकार है—ऐसा यहाँ प्रश्न नहीं लेना। यहाँ तो विकार है, वहाँ आत्मा है और आत्मा नहीं, वहाँ विकार नहीं। समझ में आया? जहाँ धुआँ है, वहाँ अग्नि है और जहाँ अग्नि नहीं, वहाँ धुआँ नहीं। इससे अग्नि है, वहाँ धुआँ है—यह प्रश्न यहाँ अभी नहीं है। उस सम्बन्ध का यहाँ काम नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

उसे व्याप्य कहते हैं। यहाँ सिद्ध क्या करना है? कि अशुद्धता किस प्रकार हुई? आत्मा में मलिनता किस प्रकार हुई, कि जिससे वह मलिनता टालने का उपाय जीव को करना पड़ता है? समझ में आया? तब सिद्ध करते हैं कि मलिनता, आत्मा के व्याप्य /कर्म / कार्य से हुई है। इसने किया तो हुआ है। वह मलिनता, कर्म के कारण हुई है —ऐसा नहीं है। समझ में आया?

आत्मा कर्ता है, उसे व्यापक कहते हैं। व्याप्ति, व्याप्य और व्यापक—तीनों को यहाँ समझाया है। अर्थात् कि व्याप्ति तो, जहाँ-जहाँ राग है, वहाँ-वहाँ आत्मा है और जहाँ

www.vitragvani.com

आत्मा नहीं, वहाँ राग (नहीं)—इतना व्याप्तिसम्बन्ध बतलाया। अब उस व्याप्ति का जो उस काल में जो परिणाम, पुण्य-पाप के परिणाम, विकारीभाव है, उसे यहाँ व्याप्य अर्थात् उसे कर्म कहते हैं। व्याप्य को कार्य कहते हैं और उस कार्य का करनेवाला आत्मा, उसे व्यापक कहते हैं। समझ में आया? कहो! यह तो भाषा याद रहे ऐसी है या नहीं? भाव, भाव की बात करते हैं।

अशुद्धता क्यों हुई? जीव की दशा में संसार की मलिनता खड़ी क्यों हुई? संसार इसकी पर्याय में है; संसार बाहर में नहीं है। जीव का संसार, जीव की पर्याय में है। पर्याय अर्थात् अवस्था। उस अवस्था में संसार-मलिन मिथ्यात्व, राग-द्वेष मलिनभाव, वह संसार है। वह संसार, जीव में अशुद्धरूप भाव हुआ कैसे? कि इसने व्याप्यरूपी विकार के परिणाम किये तो हुआ। व्याप्य विकार का परिणाम इसका कार्य और आत्मा व्यापक अर्थात् उसमें पसरनेवाला, यह आत्मा उसका कर्ता है। समझ में आया?

ऐसा कहकर यह भी सिद्ध किया कि कर्म है, उसका यह पुण्य-पाप कार्य नहीं है, उसका कर्तव्य नहीं है तथा कर्म के परिणाम और इस शरीर के परिणाम हों, वह आत्मा का कर्म नहीं है, आत्मा का कार्य नहीं है। समझ में आया? कहो, धीरुभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है या नहीं? इसमें कोई बहुत व्यापारी की वह जरूरत नहीं है, यह तो एक साधारण (बात है।) वरना तो व्यापारी को ऐसा लगे कि हमें ऐसा समझ में नहीं आता। यह न समझ में आये? यह तो साधारण बात है।

परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं कि भाई! पुरुष अर्थात् तू आत्मा; चिद्स्वरूप, चैतन्यस्वरूप आत्मा। तुझे प्रयोजनरूपी मुक्ति सिद्ध करनी है तो उसका उपाय बतलाते हैं, परन्तु वह उपाय कब बतलाया जाए? कि इसमें मलिनता हो तो मलिनता को मिटाने का उपाय हो। तो मलिनता किस प्रकार उत्पन्न हुई? समझ में आया? मलिनता है या नहीं—ऐसा सिद्ध करते हैं। कर्म है या नहीं—ऐसा यहाँ प्रश्न नहीं है। मलिनता है या नहीं? तुझमें भ्रमणा, मिथ्यात्व की और राग-द्वेष की भ्रमणा—ऐसी मलिनता तेरी दशा में है या नहीं? यदि हो तो; मिथ्यात्व, सम्यग्दर्शन द्वारा टले और राग-द्वेष, स्थिरता द्वारा टले। समझ में आया? कहते हैं, परन्तु वह मलिनता खड़ी क्यों हुई?

www.vitragvani.com

वस्तु तो शुद्ध है न? आत्मा तो शुद्ध है, द्रव्य से—गुण से शुद्ध है। चिदात्मा—आत्मा चिद्घन है, आनन्दघन है। ओहो! जिसके स्वरूप में पूर्ण पवित्रता का धाम, वह आत्मा है। ऐसे पवित्र आत्मा में मलिनता क्यों खड़ी हुई? तो कहते हैं कि वह मलिनता स्वयं की है; की है, तब खड़ी हुई है। उसका कर्ता आत्मा और वह मलिनता उसका कार्य, अर्थात् कर्म, अर्थात् कर्तव्य, अर्थात् व्याप्य है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा की दशा को एकदम स्वतन्त्र जैसी है, वैसी यहाँ तो सिद्ध करना है। आहा..! कहो, समझ में आया? कितना न्याय देकर सिद्ध करते हैं! भाई! यह विकार के-पुण्य-पाप के परिणाम अथवा मिथ्यात्व के परिणाम—पर में सुख है—ऐसी मान्यता; राग-द्वेष में हित है—ऐसी मान्यता; पर का कुछ कर सकता हूँ—ऐसा मिथ्या अभिप्राय और इष्ट-अनिष्ट को देखकर तुझमें जो राग और द्वेष, यह ठीक-अठीक होता है—ऐसी मिथ्यात्वसहित की इष्ट-अनिष्ट की वृत्तियों का मलिनभाव तुझमें है या नहीं? है तो क्यों उत्पन्न हुआ? तूने किया, (इसलिए) उत्पन्न हुआ। समझ में आया? तूने उस-उस समय वह-वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम को... वह परिणाम है, मिथ्यात्व और राग-द्वेष, आत्मा में मलिन परिणामरूपी अवस्था है। तो वह अवस्था किस प्रकार हुई? कि उस अवस्था के कर्तव्य का कर्ता आत्मा है और वह अवस्था उस कर्ता का कार्य है। कहो, समझ में आया? यह कुछ समझना नहीं और करना धर्म! कहाँ से धूल में धर्म होता होगा? अभी, धर्म कहाँ से आवे, अधर्म कैसे टले, अधर्म क्यों उत्पन्न होता है?—इसका पता नहीं होता। अधर्म कहाँ रहता होगा? कहो! अधर्म, अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव, वह अधर्म है। वह अधर्म कहाँ रहता है? शरीर में रहता है? कर्म में रहता है? स्त्री-पुत्र में रहता है अधर्म? जीव का अधर्म बाहर में रहता है? कहते हैं कि वह अधर्म तेरी दशा में रहता है, तेरी दशा में—अवस्था में रहता है। तब वह अवस्था हुई क्यों? तूने की तो हुई है। समझ में आया? कितने पहलू इसमें हैं, लो! **विदूषाम्** के लिये उद्धृत किया है, ऐसा कहा था न? पहले से कहा था। पण्डितों के लिये, समझनेवाले जीवों के लिये यह एक आध्यात्मिक पुरुषार्थसिद्धि-उपाय परम आगम में से मैं करता हूँ।

भाई! तुझमें कुछ तो प्रयोजन सिद्धि करने का प्रयत्न करता है या नहीं? सुखी होने

www.vitragvani.com

का प्रयत्न करता है या नहीं ? तो अब यह सुखी कैसे होना और दु:ख है या नहीं ?—इसका जिसे पता नहीं, उसे दु:ख कहाँ रहता है और कहाँ से उसे मिटाना और उसे दु:ख के बदले शान्ति प्राप्त करना, वह कहाँ से आता है ?—ऐसा जिसे पता नहीं, उसे अधर्म कहाँ रहता है, (इसका) पता नहीं तो अधर्म किसके आश्रय से मिटेगा, इसका भी उसे पता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ?

इस प्रकार जहाँ व्याप्य–व्यापक सम्बन्ध हों.... इस प्रकार अर्थात् ? जहाँ-जहाँ पुण्य और पाप... पाप शब्द से मिथ्यात्व भी है और पाप शब्द से हिंसा, झूठ, चोरी इत्यादि भी है तथा पुण्य शब्द से दया, दान, व्रत के परिणाम, वह पुण्य है। ये सब मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के भाव, ये जीव की दशा में विकारी परिणाम है। यह दशा इसकी विकारी है। यह विकारी दशा इसका कार्य है; उसका कर्ता आत्मा है। आत्मा वहाँ अटकता है तो करता है। उसे कर्म कराता है या संयोगी चीज विकार कराती है या पर के काम जीव करता है; इसलिए पर का काम जीव का काम है—ऐसा है नहीं। उसका काम तो अज्ञानरूप से और मिथ्यात्वरूप से स्वरूप के भान बिना मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष के, इष्ट-अनिष्ट के भाव, यह उसका काम है, इसका वह कर्ता है, इससे विकारीभाव खड़े हुए हैं। कहो, समझ में आया ?

इसी प्रकार जहाँ व्याप्य-व्यापक... व्याप्य अर्थात् कार्य और व्यापक अर्थात् उस कार्य का रचनेवाला, करनेवाला; ऐसा जहाँ सम्बन्ध हो, **वहीं कर्ता–कर्म सम्बन्ध सम्भव है,....** ऐसा जहाँ व्याप्य अर्थात् कार्य और यह रचनेवाला आत्मा—ऐसा व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, वहाँ कर्ता-कर्म सम्बन्ध सम्भव है। वहाँ व्यापक, वह कर्ता और व्याप्य, कार्य हुआ है, वह उसका कर्म। समझ में आया ? शशीभाई ! देखो ! यह शरीर का हिलना-चलना है, वह आत्मा का काम नहीं—ऐसा सिद्ध करते हैं, क्योंकि यह अवस्था है, वह व्याप्य है और इसका व्यापक तो परमाणु हैं, उसके रजकण हैं। वे रजकण व्यापक / कर्ता होकर उसका (शरीर का) हिलना-चलना काम करते हैं; वह आत्मा का कर्म नहीं है, आत्मा का कार्य नहीं है। समझ में आया ?

यह दुकान का धन्धा... पेढी पर बैठा होता है न ? फिर होते हैं न सूत की पुड़िया,

www.vitragvani.com

गेंद या जो कुछ, शक्कर बेंचे... ये सब काम होते हैं, ऐसे आने-जाने की क्रिया (होती है), वह व्याप्य है; उस व्याप्य का व्यापक तो उसके रजकण हैं; आत्मा उस व्याप्य / कर्म को करता नहीं—ऐसी यहाँ वस्तु की स्थिति, परमेश्वर सिद्ध करते हैं। आहाहा! कैसे होगा? कान्तिभाई! यह सब नामा-फामा लिखते हैं, ध्यान रखते हैं—वह कौन करता होगा? आहाहा!

कहते हैं कि **इसी प्रकार जहाँ....** यह पद्धति कही वह। व्याप्य-कार्य और व्यापक-करनेवाला—ऐसा जहाँ सम्बन्ध हो, वहाँ कर्ता-कर्म सम्बन्ध सम्भव है। जहाँ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध नहीं, वहाँ कर्ता-कर्म सम्बन्ध हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया? वीतराग कथित एक भी न्याय समझे तो उसका निबटारा हो जाए, परन्तु एक भी न्याय समझता नहीं और ऐसी की ऐसी अन्धी दौड़ हाँक रखी है अनादि की। शशीभाई! आहाहा!

ऐसा कहकर तो (ऐसा कहा), अपना कार्य स्वयं करे और पर का कार्य पर करे, इसलिए अनन्त चीजें सिद्ध हो गयी। पृथक्-पृथक् अनन्त चीजें हैं तो वह प्रत्येक पदार्थ अपनी वर्तमान हालत की अवस्थारूपी व्याप्य उसका कार्य, उसका वह परमाणु आदि, जीवद्रव्य आदि कर्ता (है)। कर्ता और कर्म, व्याप्य-व्यापक में हो सकता है। ऐसा होने से अपना व्याप्य-व्यापक, अपना कर्ता-कर्म अपने में है; पर का कर्ता-कर्म (पर में है।) अर्थात् अनन्त वस्तुएँ भी सिद्ध कर दी। समझ में आया? कैसे होगा इसमें? मगनभाई! इस मकान-बकान का ध्यान रखकर वहाँ व्यवस्थित रखे या नहीं—ऐसा होता है? ऊपर ऊँचा किया और यह किया, कितना किया? अपने आप हो जाता होगा? अपने आप मकान होता होगा? कहो, रजनीभाई! क्या होगा यह? अपने आप होता है? पागल कहे न मूर्ख।

यहाँ तो कहते हैं कि वह प्रत्येक रजकण वहाँ है और मकान का एक-एक परमाणु—ऐसे अनन्त रजकणों का वह पिण्ड है। सह चूना, धूल, मिट्टी। उसकी उस-उस समय की उस अवस्था का कार्य / व्याप्य का व्यापक वह-वह द्रव्य रजकण है। उसे कर्ता-कर्म सम्बन्ध उसके साथ लागू पड़ता है। आत्मा कर्ता और वह कार्य है— ऐसे सम्बन्ध उसके साथ लागू है नहीं। आहाहा! गजब बात भाई! ठीक होगा यह? क्या ठीक?

www.vitragvani.com

यह पूरे दिन करे; जैसा बोलना चाहे, वह बोले, लो! कहते हैं कि बोलने के रजकण उठे न? यह आवाज उठती है, वह जड़ है। उस आवाज की वर्तमान अवस्था उसका व्याप्य है, उसका कर्म है और वे परमाणु उसके व्यापक अर्थात् कर्ता हैं। आत्मा उस वाणी की पर्याय का कर्ता नहीं है। मूढ़ मानता है, वह मिथ्यात्वभाव का कर्ता होता है। समझ में आया? क्योंकि मिथ्यात्वभाव उसका व्याप्य होता है, परन्तु वह वाणी की-भाषा की पर्याय, आत्मा का व्याप्य / कर्म होती है—ऐसा नहीं है। कहो, सत्य होगा यह? छोटालालभाई! यह सब अभी तक यह मानते हैं, वह हमारा मिथ्या? जन्में तब से माने और इसके गुरु इसे कहे कि यह करो, यह कराया, यह हो, यह किया जा सकता है। आत्मा न हो तो कहीं शरीर चले? कहीं मुर्दे चलते हैं? भाषा कोई आत्मा में से निकलती है या अध्धर से निकलती है? दीवार में से निकलती है? सुन न अब! तुझे पता नहीं है। कहनेवाले को पता नहीं, सुननेवाले को पता नहीं। मोहनभाई!

'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' बापू! तेरे पुरुषार्थ का... पुरुष—ऐसा तू चैतन्यस्वरूप भगवान, उसका प्रयोजन; अर्थ अर्थात् प्रयोजन; उसकी सिद्धि की प्राप्ति का उपाय बतलाना है। उपाय करना है, तब वह कुछ उपाय, उसका उपाय, किसे टालने का उपाय करना? किसे प्राप्त करने और किसे टालने का? समझ में आया? उपाय कुछ करता है, वह कुछ टालना चाहता है और कुछ प्राप्त करना चाहता है—ऐसा सही न? तो टालना चाहता है, वह क्या? कि इसमें होनेवाले पुण्य और पाप के, मिथ्यात्व के, राग-द्वेष के भाव, उन अशुद्ध परिणामों को टालना चाहता है। वह अशुद्ध परिणाम का कार्य किसका है? कार्य तेरा है। समझ में आया? कहो, भगवानभाई! क्या बराबर? यह पिचहत्तर वर्ष में वहाँ कहीं सुना था? दया पालो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो... मर गया व्यर्थ, समझे बिना का।

वीतराग-सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान। अनन्त का अनन्तरूप से ज्ञान (ने) जाना। ऐसे अनन्त पदार्थों का यहाँ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध सिद्ध करते हैं। तेरे पुण्य-पाप के और मिथ्यात्व के भाव, वह तेरा अशुद्धपना, वह तेरा कार्य, वह तेरा व्याप्य और उसका करनेवाला, रचनेवाला कर्ता / व्यापक स्वयं, पसरनेवाला स्वयं, वह उनका कर्ता। ऐसा निर्णय करे तो फिर उसे अशुद्धता

www.vitragvani.com

टालने के लिये उपाय कहाँ करना और कैसे करना—इसकी सूझ उसे पड़े। समझ में आया? जहाँ अशुद्धता है, वहाँ भगवान आत्मा त्रिकाल शुद्धस्वरूप है। उसका अन्तर दर्शन-ज्ञान-चारित्र का उपाय करे, तब उसकी सिद्धि-कृतकृत्य आत्मा की सिद्धि की कृतकृत्यता होती है, तब मलिनता टलती है। यह उपाय भी उसमें करना है। जिसमें मलिनता है, उसे टालने का उपाय उसमें करना है। उसका उपाय कहीं शरीर में, वाणी में, पर में, मन्दिर में और स्वाध्यायमन्दिर में करना नहीं है। समझ में आया? विजयमूर्तिजी! ठीक है? ऐसा निकला यह तो। क्या मानते थे और क्या निकला!

भाई! पर की जो अवस्था दया की हुई—शरीर और जीव का टिकना; उसकी अवस्था का / व्याप्य का कर्ता वह द्रव्य है; तू नहीं। तुझमें दया का शुभभाव हुआ, वह तेरा कार्य और व्याप्य; उसका तू कर्ता; अन्य दशा का कर्ता नहीं। समझ में आया? यह मन्दिर की रचना हुई, मन्दिर की रचना की पर्याय हुई, वह व्याप्य; उसका व्यापक वे परमाणु द्रव्य हैं। तुझमें क्या हुआ? तेरा भाव शुभ हुआ। वह शुभभाव राग है, वह तेरा व्याप्य है, वह तेरा कार्य है (और) उसका कर्ता आत्मा (तू) है। उस राग का कर्ता, मन्दिर हुआ, इसलिए राग हुआ—ऐसा नहीं है; राग हुआ, इसलिए मन्दिर हुआ—ऐसा नहीं है। बराबर है? माँगीरामजी! आहाहा!

अरे..! इसकी दशा में क्या होता है और कैसे किया है?—इसका इसे पता नहीं पड़ता। या तो विकार होता है, कर्म के कारण विकार होता है, इसलिए अपने अब कर्म टालो। कर्म के कारण विकार होता है तो अब अपने अपवास-बपवास करके कर्म को टालो, लो! यह इसका उपाय! भान नहीं है कि वह कर्म तेरा है ही नहीं, कर्म का कार्य तेरा है ही नहीं; इसलिए कर्म को टालना, वह तुझमें है ही नहीं। तुझमें तो मलिनता के मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष के भाव तूने कर्ता होकर किये, (अब) तुझे टालना कर्ता होकर। उसी-उसी में उपाय है। जैसे मलिनता वहाँ है तो उसे टालने का उपाय भी पुरुष चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन करके, उसका ज्ञान करके स्थिरता करना, वह उसका उपाय है। उसी-उसी में उपाय है; बाहर में कहीं है नहीं। समझ में आया?

www.vitragvani.com

अन्य स्थान में सम्भव नहीं। क्या कहते हैं ? जहाँ व्याप्य और व्यापक सम्बन्ध होता है, वहाँ कार्य और कारण कर्तापना सम्भव हो सकता है। जहाँ व्याप्य और व्यापक न हो, वहाँ कार्य और कर्ता सम्भव नहीं हो सकता। अन्य स्थान में सम्भव नहीं है—ऐसा शब्द पड़ा है न ? नीचे है, **अन्य स्थान में सम्भव नहीं।** नीचे लाईन है। अर्थात् कि तेरे मिथ्यात्व के परिणाम—मैं देह की क्रिया करता हूँ, मैं भाषा बोलता हूँ, मैंने मन्दिर बनाया, मैंने माल तोला, मैंने माल दिया, मैंने पैसा लिया, मैंने पैसा दिया—ऐसी जो जड़ की क्रिया, उसे माना कि मैंने किया—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है, वह मिथ्यात्वभाव तेरा व्याप्य है और तू उसका कर्ता है। समझ में आया ?

अन्य स्थान में सम्भव नहीं। ऐसा करके क्या कर दिया ? जहाँ-जहाँ इसकी—जीव की दशा में विकार है, वह विकार उसका कार्य है और वह उसका कर्ता। इसके अतिरिक्त उसका कर्ता-कर्मपना, व्याप्य-व्यापकपना दूसरे में नहीं है; इसलिए दूसरे में कर्ताकर्मपना नहीं हो सकता। शरीर के काम आत्मा तीन काल में नहीं करता, वाणी नहीं बोलता तीन काल में, क्योंकि उसके साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध नहीं है। खाने की क्रिया हुई, वह आत्मा नहीं करता—ऐसा कहते हैं, क्योंकि आत्मा और उसके कार्य-कर्तापने का सम्बन्ध उसमें नहीं है। उसका (आत्मा का) कार्य विकार और आत्मा कर्ता—इतना सम्बन्ध संसार में अनादि से अज्ञानी को है। समझ में आया ?

मुक्ति का उपाय कहना है न ? जैसे इस विकारी कर्तव्य में कर्ता होकर रुका हुआ है न ? तब अब इसे टालना होवे, अर्थात् अपने प्रयोजन की सिद्धि करनी होवे तो इसे शुद्धस्वरूप चैतन्यमूर्ति चैतन्यस्वरूप—ऐसा पुरुष आत्मा, कि जिसमें विकार नहीं—ऐसे अविकारी स्वभाव की अन्तर्मुख दृष्टि करना, यह इसका व्याप्य है, यह इसका कार्य है और इसका वह आत्मा कर्ता है। ऐसे अज्ञानभाव में जो विकारी (भाव) व्याप्य और आत्मा कर्ता था; वह स्वभाव के भान में निर्विकारी शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा-ज्ञायक आत्मा है—ऐसी अन्तर्मुख स्वभाव की रुचि, दृष्टि, ज्ञान और लीनता (करें), वह आत्मा का कार्य है, क्योंकि वह आत्मा का व्याप्य है। पहला जो अज्ञान कार्य और कर्ता था, वह मिट गया। स्वभाव का आश्रय लेकर, चैतन्यप्रभु पूर्ण आनन्द है, ज्ञायक है—ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि होने

www.vitragvani.com

पर, उसका व्याप्य-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के निर्मलपरिणाम व्याप्य हुए और आत्मा उनका कर्ता है। उसे दूसरा सम्बन्ध नहीं है। अब विकार, कर्म और आत्मा कर्ता—ऐसा सम्बन्ध वहाँ नहीं रहता।

बाहर का कर्ता-कर्म सम्बन्ध तो अज्ञानी को भी नहीं है। अज्ञान में विकार परिणाम का कार्य और व्याप्य तथा कर्ता आत्मा—ऐसा सम्बन्ध था। वह जहाँ चैतन्य शुद्धस्वरूप है, वह पर्यायबुद्धि में राग का कर्ता था। (अब) स्वभावबुद्धि, सम्यक्बुद्धि, चैतन्यबुद्धि हुई, चैतन्यबुद्धि सम्यग्दर्शनबुद्धि, शुद्ध चैतन्यस्वरूप महास्वभाव का सागर हूँ—ऐसा सम्यग्दर्शन; उस स्वभावसन्मुख का ज्ञान, स्वभाव में स्थिरता—ऐसे तीन अंश दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो धर्मरूप हैं, वे उसका व्याप्य हुए, आत्मा उनका कर्ता / व्यापक हुआ। अब विकारी परिणाम का कर्ता और विकारी (परिणाम) कर्म—यह ज्ञानी को रहा नहीं। समझ में आया? अज्ञानी को पर का कार्य और कर्तापना तो था नहीं; इनका था, विकारी मिथ्यात्व और राग-द्वेष का कार्य और उसका कर्ता।

अब जहाँ 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय'—पुरुष ऐसा भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, आनन्दमूर्ति आत्मा में, बेहद शक्ति का पिण्ड-सत्त्व आत्मा—ऐसी अन्तर्मुख की... अन्तर्मुख की... बहिर्मुख का झुकाव था, वह छोड़कर अन्तर्मुख के झुकाव का कार्य जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूपी, शान्तिरूपी अर्थात् चारित्र / वीतरागी पर्याय जहाँ धर्म की / मोक्षमार्ग की हुई, उसका कर्ता कौन? कि पूर्व के मलिन परिणाम थे, वे उसके कर्ता? पूर्व में राग की मन्दता थी, उससे यह निर्मल पर्याय प्रगटी, वह राग की मन्दता कर्ता और निर्मल पर्याय कर्म / कार्य—ऐसा है? नहीं, नहीं; ऐसा नहीं है। विकारी परिणाम तो अज्ञान का अथवा अशुद्धता का कार्य था। वह कार्य वापस कारण होकर शुद्धता की पर्याय का कारण होवे—ऐसा नहीं होता।

आत्मा का धर्म अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु की अन्तर्मुख की दृष्टि, ज्ञान और शान्ति (होना)। स्वभाव के अवलम्बन से, शान्तिसागर के आश्रय से (शान्ति) प्रगट करने पर वहाँ पूर्व की विकारी पर्याय का व्यय हुआ, निर्विकारी पर्याय की उत्पत्ति हुई, निर्विकारी पर्याय के कार्य का आत्मा कर्ता हुआ। इसकी कोई पूर्व की पर्याय कर्ता नहीं;

www.vitragvani.com

कर्म हटा, इसलिए आत्मा में सम्यग्दर्शन का कार्य हुआ—ऐसा नहीं। ठीक से समझ में आता है या नहीं?

दूसरे स्थान में, दूसरे क्षेत्र में या दूसरे भाव में भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप को भूलकर अशुद्धता के, मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिणाम का कर्ता होकर, कर्ता होकर स्वतन्त्र (करता है।) कर्ता की व्याख्या—स्वतन्त्ररूप से करे, जिसे दूसरे की अपेक्षा नहीं। उस विकार को स्वतन्त्ररूप से जीव करे, जिसमें कर्म की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा विकार का स्वतन्त्ररूप से करनेवाला और मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष के परिणाम, वह उसका कार्य।

अब, गुलाँट खाता है। स्वतन्त्ररूप से भगवान आत्मा कर्ता। द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि पड़ने से सम्यग्दर्शन (होने पर), द्रव्यस्वभाव का ज्ञान होने पर (सम्यग्ज्ञान) द्रव्यस्वभाव में स्थिरता होने पर, यह चारित्र (हुआ), इनका कर्ता वह द्रव्य है और उसकी निर्मलदशा, वह उसका व्याप्यरूपी कर्म है। इसके अतिरिक्त दूसरे स्थान में उसका कर्ता-कर्मपना सम्भव नहीं है। भाई! इसलिए अब विकार कर्म और आत्मा कर्ता, यह वहाँ सम्भव नहीं है। समझ में आया?

इसी प्रकार.... इसी प्रकार। अब भाव्य-भावक की (व्याख्या करेंगे।) व्याप्य-व्यापक की व्याख्या की। शशीभाई! आहाहा! सर्वज्ञ स्वभाव ने जाना; सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं होती नहीं। अनन्त पदार्थ, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें—इनके स्वतन्त्रपने का, व्याप्य-व्यापकपने का, कर्ता-कर्मपने का, अनन्त का अनन्तपने ऐसा ज्ञान जिन्हें हों, वे सर्वज्ञ (हैं)।

जिसके मत में ऐसे द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें (नहीं), जिसके एक-एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुणों का व्यापकपना, कर्म / कार्य और स्वयं कर्ता—ऐसी, जिसके मत में ऐसी चीज नहीं, उसके मत में सर्वज्ञ नहीं हो सकते। समझ में आया? और जिसके मत में यह सब है, सब-सर्व देश, काल, द्रव्य, भाव, गुण, पर्याय, उसको जिसने जाना, ऐसे सर्वज्ञ, ऐसे भाववाले में सर्वज्ञ होते हैं। ऐ...ई...! शशीभाई! आहाहा! और उन सर्वज्ञ की वाणी में—आगम में यह आया।

www.vitragvani.com

भाई! तू अनन्त में का पृथक् पदार्थ है। तेरे मलिन परिणाम का कर्ता तू, मलिन परिणाम तेरा कार्य, वह तेरा स्वतन्त्र तुझमें है; पर के कारण नहीं, पर में नहीं। तेरा व्याप्य-व्यापक का पर में नहीं है, तेरा व्याप्य-व्यापकपना पर के कारण नहीं है। आहाहा! देखो न! स्व-पर अनेक सिद्ध करते हैं। अनेक की व्याख्या फिर अनन्त में जाती है। समझ में आया?

ऐसे जब व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, वहाँ कर्ता-कर्म सम्बन्ध होता है। ऐसे भाव्य-भावक सम्बन्ध हो, वहाँ भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध होता है; अब यह सिद्ध करते हैं। समझ में आया? इसी प्रकार **जो जो भाव अनुभवन करने योग्य हों, उन्हें भाव्य कहते हैं।** क्या कहते हैं? कि जीव में जो हर्ष-शोक के परिणाम, हर्ष-शोक के भाव (होते हैं), वह भाव्य है—अनुभवने के योग्य है। आत्मा को शरीर, स्त्री का शरीर, हड्डी-माँस, लड्डू, दाल, भात, शाक—यह आत्मा को भोगने योग्य भाव्य नहीं है। यह भाव्य आत्मा को नहीं है, यह भोगनेयोग्य नहीं है। आहाहा! इसे (आत्मा को) भोगनेयोग्य भाव्य (होवे तो) हर्ष और शोक के परिणाम हैं। **जो जो भाव....** दशा अनुभवने, वेदनेयोग्य है, भोगनेयोग्य है, **उन्हें भाव्य कहते हैं।** कहते हैं कि हर्ष-शोक के परिणाम, वह भाव्य है, उनका भोक्ता आत्मा है। आत्मा भोक्ता और स्त्री की देह, लड्डू, दाल, भात भाव्य अर्थात् भोगनेयोग्य—ऐसा वस्तु में नहीं है। समझ में आया? यह प्रत्यक्ष पारायण है। आहा..!

सिगरेट पीवे न? छोटी होवे तो ऐसे हाथ रखे, ऐसे हाथ रखे। कहते हैं, उस काल में तुझे भोगने योग्य क्या है? वह बीड़ी (सिगरेट) की पर्याय है? नहीं; बीड़ी की पर्याय भाव्य और भोगने को योग्य तो उसके परमाणु हैं। ऐ..ई..! वीतराग की बात ही जगत से उल्टी। यह बात-बात में अन्तर। 'आनन्दा कहे परमानन्दा माणसे-माणसे फेर, एक लाखे तो न मले ने एक तांबिया ना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि हे अज्ञानी आत्मा! तुझे और मुझे न्याय में क्षण-क्षण में, शब्द-शब्द में अन्तर है। आहाहा! समझ में आया?

जो भाव, **जो जो भाव....** अस्ति की न? भाव की अस्ति है। किसकी? राग-द्वेष, हर्ष-शोक की। जीव को वह अनुभवने योग्य भाव है। राग और द्वेष, हर्ष और शोक, बस! ये परिणाम ही आत्मा को भोगनेयोग्य है, इन्हें भाव्य कहते हैं। **अनुभव करनेवाले पदार्थ को भावक कहते हैं।** और उन विकारी परिणामों का अनुभव करनेवाला आत्मा,

www.vitragvani.com

उसे भावक—उस भाव का भोगनेवाला कहा जाता है। आहाहा! दुनिया कहती है न? ईश्वर ने दिया, वह भोगते हैं। क्या धूल! धूल भोगे? पैसा, स्त्री सुन्दर रूपवान हो और मक्खन जैसे शरीर को भोगे... तुझे भान नहीं, अक्कल नहीं। सुन न!

भाई! भगवान ऐसा कहते हैं और ऐसा है कि उस काल में तुझे जो राग का भाव होता है न? वह राग का भाव्य है, उसे भोगने के योग्य है। तू उसका-विकार का अज्ञानभाव में भोक्ता है। समझ में आया? पर को भाव्य अर्थात् भोगनेयोग्य बनाये—ऐसी परवस्तु कभी बनती नहीं और तू उसका भोगनेवाला बने—ऐसा तुझमें कभी होता नहीं। समझ में आया? ऐसा बढ़िया साटा खाता हो, साटा घी में आर-पार... ए...क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? ऐ..य! डोसा! ऐसी भाषा अपनी काठियावाड़ी में है। वह फिर ऐसे दाँत न हो तो ऐसी मिठास तो लगे या नहीं? भगवान इनकार करते हैं, भाई! सुन न प्रभु! वह मिठास की पर्याय तो जड़ की है। मिठास जो है, मीठापन, मीठीदशा तो जड़ की है। वह तूने भोगी है? वह तेरे भोगनेयोग्य दशा हुई है? तुझे पता नहीं। उस काल में तुझे प्रेम आया है, राग-पाप राग आया है, उस पाप राग का भाव्य अर्थात् भोक्ता तू है और वह भोगनेयोग्य पाप राग है, वह चीज (परचीज) नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता। समय-समय का भोक्ता उसके भाव्य का, आहा! यह तो कोई बात! समय-समय का उसके विकारी परिणाम को योग्य जो भाव्य, वह भोगने के योग्य है; तू उसका भोक्ता है, भावक है; इसके अतिरिक्त भाव्य-भावक (सम्बन्ध अन्यत्र कहीं नहीं है।)

ऐसा भाव्य-भावक सम्बन्ध जहाँ हो वहीं भोक्ता.... (पहले कहा) व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो वहाँ कर्ता-कर्म सम्बन्ध होता है, ऐसा। **ऐसा भाव्य-भावक सम्बन्ध जहाँ हो वहीं भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध सम्भवित है,....** भाषा भी सब पारस्परिक रखी। समझ में आया? आत्मा में विकारी हर्ष और शोक, दिलगिरी या रति के जो परिणाम जीव में होते हैं, वे जीव को भोगने के योग्य हैं और भोक्ता आत्मा है। अब उन्हें मिटाना है, तब उसे शुद्धस्वभावसन्मुख की ओर दृष्टि और ज्ञान होने पर जो सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की पर्याय हुई, वह भाव्य है, आत्मा उसका अपुभव करनेवाला-भोगनेवाला है। समझ में आया? आहाहा!

www.vitragvani.com

अज्ञान में मिथ्यात्व और राग-द्वेष, उसके हर्ष-शोक के परिणाम का भोक्ता (होता है), बस! वह भाव्य। परचीज में नहीं, परचीज के कारण नहीं। ये साटा या स्त्री के कारण यहाँ राग-द्वेष भाव्य हुआ—ऐसा नहीं और भाव्य आत्मा का वह पर हो— ऐसा नहीं। क्या कहा, समझ में आया? यह स्त्री का शरीर या लड्डू, दाल, भात के कारण हर्ष-शोक का भाव्य हुआ—ऐसा नहीं और यह शरीर व परवस्तु आत्मा को भाव्य हो—ऐसा नहीं। आत्मा को वह भोगने के योग्य हो—ऐसा नहीं और उनके कारण यहाँ भाव्य भोगनेयोग्य हो—ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वीतराग की एक-एक बात बटवारा करके भेदज्ञान करा डाले ऐसी है। भाई! तुझे पता नहीं। कहते हैं कि भोगने के योग्य अज्ञानी को विकारीभाव है और भोक्ता आत्मा है। ऐसा जहाँ भाव्य-भावक है, वहाँ भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध है। भोक्ता आत्मा और भोग्य वह विकारीभाव। धर्म की दशा, जहाँ आत्मा के अनुभव का भान हुआ (कि) भगवान आत्मा शुद्ध स्वभाव का सागर है—ऐसा जहाँ राग से भिन्न पड़कर स्वभाव का सम्यग्दर्शन हुआ। स्वभाव का सम्यग्दर्शन, ऐसे। सम्यक् भान, श्रद्धा अथवा देखना। सम्यग्ज्ञान हुआ और सम्यक् शान्ति हुई, वह भाव्य है और आत्मा उसका भोक्ता है; इसलिए वहाँ भाव्य-भावक सम्बन्ध ज्ञानी को लागू पड़ा; इसलिए ज्ञानी को भोक्ता-भोग्य सम्बन्ध वहाँ लागू पड़ता है। विकारीभाव भाव्य और आत्मा भोक्ता—यह ज्ञानी को लागू नहीं पड़ता। अज्ञानी को निर्विकारी भोग्यभाव और आत्मा भोक्ता—ऐसा उसे लागू नहीं पड़ता। आहा! यह १० वीं गाथा।

अन्य स्थान पर नहीं। भोगने योग्य जीव का भाव, आत्मा के अतिरिक्त बाहर नहीं होता और भाव्य, आत्मा के अलावा बाहर नहीं होता और भावक—उस भाव्य का भावक भी दूसरा बाहर नहीं होता। स्वयं का स्वयं भावक और स्वयं विकारीभाव का भोगनेवाला। इस प्रकार भाव्य-भावक और व्याप्य-व्यापक का स्वरूप अनादि से सिद्ध सम्बन्ध है। उसे समझे तो इसे स्वरूप सन्मुख की दृष्टि करके वह विकारी भाव्य है, उसे मिटाकर निर्विकारी भोक्ता हो, उसे धर्म कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)